शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग), कालीचरण पी०जी० कालेज, लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

– डॉ० पंकज सिंह

बौद्ध दर्शन एक ओर जहाँ अध्यात्मिक उन्नति का सम्यक समाधान प्रस्तुत करता है, वही उसकी सामाजिक-धार्मिक-राजनैतिक संस्थाएँ लोकतांत्रिक एवं कौशलपूर्ण प्रबन्धन का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। छः शताब्दी ईसा पूर्व की यह व्यवस्था न केवल पश्चिमी समाज के लोकतांत्रिक व्यवस्था का जनक होने का दम्भ तोड़ती है बल्कि आज की समाज-व्यवस्था को सच्चा आईना दिखाती है।

विषय संकेतः- आधुनिक सन्दर्भ, बौद्ध दर्शन, सामाजिक लोकतांत्रिक विश्लेषण

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। चिन्तन मनुष्य का विशिष्ट गुण है। इसी विशिष्टता के कारण समस्त प्राणी जगत में मनुष्य को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। बौद्धिक क्षमता के कारण वह इस संसार को अपनी निजी दृष्टि से अनुभव करता है और अपने लिए नियम-कानून बनाता है। आज हमारे समाज में नित्यप्रति लोकतांत्रिक मूल्यों और आदर्शों की स्थापना एवं नियमन के लिए संस्थाएँ बनती हैंए उनमें सुधार और परिष्कार होता है। पुनः अवनति के उन्ही यथार्थों को पाकर मन विषण्ण हो उठता है। हमारी दृष्टि सहज इतिहास बोध की ओर अग्रसर होती है। इस संदर्भ में बौद्ध दर्शन की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है जिससे कुछ स्थायी आदर्शोंप्लब्धि के मार्ग निगमित किए जा सकें और उसके आलोक में वर्तमान संस्थाओं का मूल्यांकन किया जा सके। बौद्ध दर्शन की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में है। आज भी बौद्ध दर्शन के अनुयायी सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान हैं। यह अत्यन्त गर्व की बात है कि छठी शताब्दी ई0 पूर्व के समय में गौतम बुद्ध द्वारा स्थापित मान्यताएँ आज भी विश्व स्तर पर श्रेष्ठ हैं। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण सदियों से चले आ रहे अंध-विश्वासों और अंध-भक्ति को तर्क की कसौटी पर कसकर उसे समझने-बूझने व स्वीकार करने लगा है। बौद्ध धर्म ने मनुष्य को तार्किक बनाने की दिशा में कदम बढ़ाया और सांसारिक समस्याओं का आध्यात्मिक हल ढूँढने की प्रवृत्ति पर बंदिश लगायी। बुद्ध के अनुसार यदि समस्या सांसारिक व व्यावहारिक है तो उसका समाधान भी व्यावहारिक होगा न कि आध्यात्मिक। गौतम बुद्ध की इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि ने संसार के कई धर्मों की सत्ता को चुनौती दिया। तत्कालीन समाज व राजनैतिक सत्ता को एक नई सोच व नई दिशा प्रदान करने की सफल कोशिश की, वैदिक कर्मकाण्डों, पशुबध के प्रति अंधभक्ति से समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया।

बौद्ध धर्म ग्रंथों में प्राचीन चार वर्णों का उल्लेख प्राप्त होता है किन्तु बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था पर सदैव कटु प्रहार किया। वे मनुष्य की उच्चता का निर्धारण उसके कर्मों से करते थे न कि उसके जन्म से। महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा था कि ''आग जलाने के लिए लकड़ी का भेद नहीं देखा जाता। उसी प्रकार निर्वाण के लिए भी मनुष्यों में कोई भेद-भाव नहीं हो सकता।''[1]

इस प्रकार बुद्ध ने पुनः जन्म के आधार को नकारते हुए कर्म को प्रधानता प्रदान की। प्रारम्भिक दौर में भी वर्ण-व्यवस्था को जन्मना नहीं माना गया। जाति के सन्दर्भ में भेदभाव आज से नहीं शताब्दियों से हो रहा है, लेकिन तार्किक रूप से आज इसको पूरी तरह से नकार दिया गया है, आज जातियों के प्रति संकीर्णता व्यवहार में तो प्रायः समाप्त हो गयी है, सिर्फ मानसिकता और अवचेतन संस्कारों में अभी शेष है। जिसके प्रति निरन्तर संघर्ष जारी है।

बौद्ध साहित्य से प्रकट होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। उनके समकालीन सामाजिक संदर्भ के प्रभाव उनके विचारों में भी देखे जा सकते हैं। हम अक्सर यह पढ़ते रहे हैं कि बुद्ध ने शुरुआत में स्त्रियों के संघ प्रवेश पर हामी नहीं भरी थी, किन्तु आनन्द से कहा था कि ''आनन्द अब धर्म चिर स्थायी न रह सकेगा। जहाँ स्त्रियाँ गृहस्थ जीवन का परित्याग कर गृहविहीन जीवन में प्रवेश करने लग

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग), कालीचरण पी०जी० कालेज, लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

जाती हैं, वहाँ धर्म चिरस्थायी न रह सकेगा। जिस प्रकार धान के खेत पर पाला पड़ जाता है तब वह अधिक नहीं टिक सकता अथवा गन्ने की फसल लाल बीमारी से, जिसमें पौधों में कीड़े लग जाते हैं, उसी प्रकार आनन्द, इस सूत्र और विनय की दशा होती है जहाँ स्त्रियों को गृह छोड़कर गृहविहीन जीवन में प्रवेश करने का अधिकार मिल जाता हैं, वह धर्म चिरस्थायी नहीं रह जाता।''[2]

महात्मा बुद्ध द्वारा अभिव्यक्त इस मंशा के कारण उनको स्त्री-विरोधी बताने का प्रयास किया जाता है। जबकि हकीकत में बुद्ध मानवीय प्रवृत्तियों एवं दुर्बलताओं से भली-भाँति परिचित थे। यह विचार समकालीन समाज का प्रभाव प्रतीत होता है, उनका अपना विचार नहीं। उनका मानना है कि निर्वाण का मार्ग तप का मार्ग है, सभी स्त्री-पुरुष तप के लिए समर्थ नहीं होते हैं। इसलिए मार्ग से भटकने की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन स्त्री-पुरुष में भेदभाव को वे स्वीकार नहीं करते थे। अगर करते होते तो किसी भी दशा मं संघ में स्त्री प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं करते। बौद्ध साहित्य में अनेक विदुषी एवं सुयोग्य स्त्रियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं, जैसे-खेमा, सुभद्रा, अमरा, उदुम्बरा। थेरीगाथा में बौद्ध-भिक्षुणियों द्वारा रचित गीतों का संग्रह है। आम्रपाली जो वैशाली की नगर-वधू थी, महात्मा बुद्ध ने उसके आतिथ्य को स्वीकार किया और बुद्ध ने इसे उपदेश भी दिया। इससे यह ध्वनित होता है कि बुद्ध उदार हृदय के थे, न कि संकीर्ण। बौद्ध साहित्य का प्रमुख ग्रंथ दीर्घ निकाय का यह कथन अत्यंत सारगर्भित प्रतीत होता है जो गृहस्थ जीवन के अनुकूल ह। ''पतियों को अपनी पत्नियों का सत्कार करना चाहिए और यथासंभव उनकी प्रार्थनाओं के अनुसार आचरण करना चाहिए। उन्हें पर-स्त्रीगमन नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने गृह का पूर्ण अधिकार पत्नियों को देना चाहिए तथा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण यथा-साध्य रूप में प्रदान करना चाहिए। पत्नियों को अपने कर्तव्य में निपुण तथा समस्त परिवारजनों के प्रति मृदु एवं दयालु होना चाहिए। वे पवित्र तथा गृह व्यवस्था में कुशल हों एवं अपना कार्य बुद्धिमत्ता तथा उत्साह से करें।''[3] निःसंदेह महात्मा बुद्ध के मन में आर्ष चिंतन की महानतम उपलब्धि परिवार व्यवस्था के प्रति काफी सकारात्मक सोच थी।

उनके विचारों से स्पष्ट होता है कि परिवार भारतीय संस्कृति का मूल आधारभूत ढाँचा है जिसका निर्माण आपसी सहयोग व सामंजस्य से होता है। आज सामाजिक-राजनैतिक, आर्थिक जीवन में महिलाओं की उपस्थिति लगातार बढ़ रही है। ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक महिलाओं की व्यापक साझेदारी इसका प्रमाण है। आर्थिक क्षेत्र में भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हुई है। बुद्ध के स्त्री संघ प्रवेश से शुरु हुई परम्परा का असर आज देश के प्रत्येक क्षेत्र में दिखलाई पड़ रहा है। आज हिन्दुस्तान हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी का स्वागत कर रहा है। बुद्ध भेदभाव मुक्त समाज की अवधारणा में विश्वास रखते थे और सामाजिक सम्बंधों की स्वीकार्यता को छिपाने में विश्वास नहीं करते थे। आज के समाज को बुद्ध के क्रिया-कलापों से सीख लेकर अपने बंद दिमाग की खिड़कियों को खोलने की आवश्यकता है। बुद्ध हर प्रकार की सामाजिक जड़ता के खिलाफ हैं।

बुद्ध ने समाज में व्याप्त धार्मिक अंध-विश्वासों पर जोरदार प्रहार किया है। तत्कालीन समाज में व्याप्त पशुबध, यज्ञवाद, वेद-वाद, बहुदेववाद का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया। ई0पू0 छठी शताब्दी तक ब्राह्मण धर्म के विरुद्ध समाज में व्यापक असंतोष व्याप्त हो चुका था। उस समय ब्राह्मण धर्म अपनी वैदिक सहजता और सरलता को तिलांजलि देकर घोर जटिल और यांत्रिक बन गया था, आत्मनिवेदन के स्थान पर कर्मकाण्ड से युक्त हो चुका था। कर्मकाण्ड की क्रियायें इतनी जटिल और मंहगी हो गयी थी कि इस कार्य को सम्पादित करने के लिए विशेषज्ञ वर्ग-पुरोहित वर्ग की आवश्यकता अनिवार्य हो गयी। इससे यह ध्वनित होता है कि अराध्य और आराधक का सम्बंध प्रत्यक्ष न होकर पुरोहित की मध्यस्थता पर निर्भर हैं। पुरोहित ईश्वर व भक्त के मध्य खड़ा दिखाई देने लगा। पुरोहितों ने यह प्रचारित किया कि बिना मेरी उपस्थिति के ईश्वर तक पहुँचना संभव नहीं है। गौतम बुद्ध ने इस अराजक मंशा पर प्रहार किया- उनके अनुसार, मोक्ष प्राप्ति के लिए किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। यह बात बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में, जब पांचों ब्राह्मणों ने उनका साथ छोड़ दिया था, से प्रमाणित है। उनकी दृष्टि में प्रत्येक मनुष्य निर्वाण प्राप्त करने का अधिकारी है। अन्य विचारकों ने भी इस

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग), कालीचरण पी०जी० कालेज, लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

मंतव्य को प्रमाणित किया है। रायज डेविड्स के अनुसार ''निर्वाण मन की पापहीन शान्तावस्था के समरूप है, जिसे सबसे अच्छी तरह पवित्रता पूर्ण शांति, शिवत्व और प्रज्ञा कहा जा सकता है।''[4]

डॉ0 राधकृष्णन के अनुसार, ''निर्वाण व्यक्तिगत साधना से सम्बंधित है, न कि ब्राह्मण, पुरोहित या धर्म गुरुओं की इच्छा से सम्बंधित है।''[5]

वर्तमान समय में भी धर्म के नाम पर मठों की स्थापना हुई है और यह मठ कालान्तर में शोषण के आयाम सिद्ध हुए हैं। धर्म-गुरुओं का भटकाव हुआ है और वे सांसारिक मायालोक से अपने को अलग नहीं कर पाये हैं। आज वह समय आ गया है कि जनमानस फिर से अपने आप को इन मायावी धर्मगुरुओं के जाल से अपने को मुक्त करें। जैसा बुद्ध ने अपने समय में किया था। धार्मिक चिंतन का आधार पूर्णतः वैज्ञानिक होना चाहिए न कि केवल अंध-भक्ति पर आधारित।

महात्मा बुद्ध ने न केवल दुःख से निवृत्ति का मार्ग बताया, बल्कि बौद्ध संघ के संघटनात्मक क्रिया-कलाप द्वारा भविष्य की राजनैतिक विचारधाराओं की भूमिका का भी आगाज किया। बुद्ध ने न केवल व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्थान उपयुक्त मार्ग ढूढ़ा बल्कि बुद्ध के ऊपर लोकतांत्रिक समाज के मूल्य गणतंत्रतात्मक प्रणाली का व्यापक असर था। इसका कारण कि कपिलवस्तु राज्य स्वंय गणतंत्रतात्मक प्रणाली से संचालित था। उस समय के प्रमुख गणराज्यों में कपिलवस्तु के शाक्य, रामगाम के कोलिय, पावा के मल्ल, कुशीनारा के मल्ल, मिथिला के विदेह, पिप्पलवन के मोरिय, सुंसमार पर्वत के मग्ग, अलकघ के बुलि के सपुत्र के कलाम, वैशाली के लिच्छिवि थे। शाक्य गणराज्य का बौद्ध साहित्य में बहुत महत्त्व है। शाक्यगण राज्य जनतंत्रात्मक पद्धति द्वारा शासित राज्य था। इस राज्य में शासन सत्ता जनता के हाथ में थी, ऐसा प्रमाण मिलता है कि राज सत्ता 80 हजार कुलीन परिवारों के हाथ में थी। राजा या मुखिया का निर्वाचन होता था। महात्मा बुद्ध के पिता शुद्धोधन इसी प्रकार से निर्वाचित हुए थे। निर्वाचन के पश्चात् वह राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते थे। राज व्यवस्था के संचालन के लिए एक परिषद् का निर्माण किया जाता था, जो परामर्शदात्री परिषद के रूप में कार्य करती थी। राज्य के समस्त कार्य इसी परिषद् की सहमति से किया जाता था। राज्य का प्रत्येक नागरिक राष्ट्र का सेवक माना जाता था। कपिलवस्तु में जिस संथागार का उल्लेख मिलता है वह यही परिषद है। महात्मा बुद्ध वज्जिसंघ की सुव्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने अपने शिष्य आनन्द से वज्जियों की प्रशंसा करते हुए कहा था कि ''जब तक वे बार-बार अपने संस्थागार में बैठक करते रहेंगें। मिलकर सहमति से रहेंगें, निर्णय लेगें, प्राचीन परम्पराओं का पालन करेंगें, अपने बड़े-बूढ़ों का सम्मान करेगें तथा उनके आदेश का पालन करेंगें, तब-तक उनकी प्रगति ही होती रहेगी।''[6]

संथागार को हम राज्य की व्यवस्थापिका सभा कह सकते हैं। संथागार का अधिवेशन तभी वैध हो सकता था जब उसमें सदस्यों की एक निश्चित संख्या (कोरम) उपस्थित हो। सभा भवन में सदस्यों के बैठने के लिए आसनों का प्रबन्ध आसन पन्नापक नामक एक पदाधिकारी करता था, जो विषय विचार के लिए प्रस्तुत किया जाता था। उसी पर प्रत्येक सदस्य को बोलना होता था। अन्य विषय पर बोलने की आज्ञा नहीं मिलती थी। इसे 'अनग्र विरोध' कहते थे। प्रस्ताव पाठ को 'ज्ञाप्ति' का 'अनुसावन' कहते थे। प्रस्ताव पाठ कई बार होता था। जो सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में होते थे वे 'मौन' रहते थे, विपक्ष में होते थे वे बोलते थे। विवाद की स्थिति में मत विभाजन होता था। मत-विभाजन भिन्न-भिन्न रंगों की शलाकाओं के द्वारा होता था। एक रंग की शलाका एक प्रकार के मत को सूचित करती थी। शलाकाओं का संग्रह करने वाला 'शलाकाग्राहपक' कहलाता था। कभी-कभी विवादग्रस्त प्रश्न अन्य राज्य संघों की सम्मति से भी हल कर लिया जाता था। अधिवेशन की पूर्ण कार्यवाही लेखबद्ध कर ली जाती थी। यह कार्य लिपिकों द्वारा सम्पन्न होता था। संथागार ही राज्य की सबसे बड़ी संस्था थी। इसी के द्वारा राजा, उपराजा, सेनापति एवं अन्य पदाधिकारी की नियुक्ति होती थी। यही सभा राजनीति की दिशा व दशा तय करती थी। संथागार के अतिरिक्त राजा को सलाह देने के लिए एक मंत्रिमण्डल भी होता था। इसके सदस्यों की संख्या बहुत कम होती थी। लिच्छिवियों के मंत्रिमण्डल में नौ और मल्लों के मंत्रिमण्डल में केवल चार सदस्य होते थे। जो प्रान्तीय शासन को संचालित करने में मद्दगार होते थे।''[7]

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग), कालीचरण पी०जी० कालेज, लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

प्राचीन गणराज्यों की गणतंत्रात्मक प्रकृति के संथागार एवं आज की भारतीय संसदीय प्रणाली में काफी साम्यता प्रतीत होती है, शासन सत्ता किसी एक के अन्दर सन्निहित न होकर परिषद अथवा संसद के अधीन रहती थी। जनता को एकदम से नकार कर निर्णय कर पाना प्राचीन काल के गणराज्यों में न था, उसी श्रृंखला में आज के दौर में भी संसद की सर्वोच्चता बरकरार है।

इस गणतंत्रत्मक प्रणाली में पले-बढ़े गौतम बुद्ध ने अपने संघ के कार्यों को भी जनतांत्रिक पद्धति के द्वारा संचालित करने का नियम बनाया। संघ बौद्ध भिक्षुओं की जीवन प्रणाली का नियामक और बौद्ध धर्म का सर्वश्रेष्ठ प्रचारक था। महात्मा बुद्ध ने इस राजनीतिक प्रणाली को धार्मिक क्षेत्र में भी कार्यान्वित किया। इस दृष्टि से उनका भिक्षु-संघ वास्तव में एक धार्मिक गणतंत्र था। उसमें समस्त सदस्यों के अधिकार समान थे। महात्मा बुद्ध ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया था। उन्होंने अपने निर्वाण के समय स्वयं कहा था कि ''आनन्द! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त किये हैं, मेरे बाद वे ही तुम्हारे शास्ता होंगे।[8] संघ की कार्य प्रणाली द्वारा बौद्ध संघ के जनतांत्रिक होने का प्रमाण मिलता है। संघीय कार्यों में प्रत्येक भिक्षु के अधिकार समान थे। प्रत्येक संघकम्म के लिए संघ की उपस्थिति आवश्यक थी अन्यथा यह कार्य अवैधानिक समझा जाता था।[9] संघ के अधिवेशन के लिए कम से कम 20 भिक्षु सदस्यां की उपस्थिति अनिवार्य थी।[10] यह कोरम कहलाता था। अनुपस्थित व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के द्वारा अपना मत प्रकट करा सकता था।[11] संघ की सभा में सबके बैठने की व्यवस्था करने वाले पदाधिकारी को 'आसन प्रज्ञापक' कहते थे।[12] प्रस्ताव रखने के पूर्व उसकी सूचना दे दी जाती थी। इस सूचना को 'ज्ञप्ति' कहते थे। प्रस्ताव को 'नत्ति' कहा जाता था। ''प्रस्ताव का प्रस्तुत करना 'अनुस्सावन' अथवा 'कम्मवाचा' कहलता था।''[13] तत्पश्चात् प्रस्ताव पर विवाद होता था जिस विषय पर सदस्यों में मतभेद होता था उसे अधिकरण कहते थे। प्रत्येक सदस्य स्वतंत्रतापूर्वक अपना मत (छन्द) दे सकता था। जो व्यक्ति प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति प्रदान करते थे वे मौन रहते थे। कभी-कभी मत विभाजन शलाकाओं के द्वारा होता था। मतदान दो प्रकार का होता था - गुप्त (गुल्हक) और प्रत्यक्ष (विवतक), निर्णय बहुमत से होता था। बहुमत द्वारा हुये निर्णय को 'ये भूमस्सिकम्' अथवा 'ये भयसीयम्' कहते थे। प्रत्येक प्रस्ताव तीन बार प्रस्तुत और स्वीकृत किया जाता था। तभी वह अधिनियम बनता था। कभी-कभी प्रस्ताव विशेष विचार हेतु उप-समिति (उब्बाहिका) के सुपुर्द कर दिया जाता था।

संघ-प्रवेश को उपसम्पदा कहते थे, प्रारम्भ में महात्मा बुद्ध स्वयं उपसम्पदा सम्पादित करते थे लेकिन बाद में उन्होंने उपसम्पदा का अधिकार भिक्षुओं को सौंप दिया। संघ में प्रविष्ट हो जाने पर भिक्षु को किसी आचार्य के निरीक्षण में रहकर कुछ वर्षों तक अध्ययन करता पड़ता था। इस काल को 'निस्साय' कहा जाता है। संघ में प्रवेश पहले बहुत आसानी से हो जाता था, किन्तु बाद में संघ प्रवेश के पूर्व कुछ नियम बना दिये गये क्योंकि बौद्ध संघ कई शासकों द्वारा संरक्षित था, इससे समाज के अराजक लोग उसमें प्रवेश कर जाते थे और सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे थे, इसलिए '15 वर्ष की अवस्था से कम का युवक संघ प्रवेश नहीं पा सकता था।'[14] चोर, हत्यारों और ऋणी व्यक्तियों के लिए संघ प्रवेश की आज्ञा न रही। युवक के लिए अब आवश्यक हो गया कि गृह त्याग के पूर्व वह अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर ले।[15]

संघ की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति होती थी। जैसे कि- भवन, कक्ष, प्राचीर, कूप आदि के निर्माण कार्य के लिए 'नव कम्मिक', खाद्यान्न संग्रह करने के लिए 'भण्डागारिक', विविध सामग्री खरीदने के लिए 'कप्पियकारक', वस्त्र संग्रह करने के लिए 'चीवरपतिग्गाहपक', आराम का प्रधान निरीक्षक 'आरामामिक पुसक'। इतना ही नहीं, भिक्षुओं के लिए भी एक आचार संहिता बनी जिसमें बौद्ध भिक्षु केवर तिचीवर (तीन वस्त्र) धारण कर सकता था- 'अन्तर्वासक', 'उत्तरसंग' और 'संघाति'। ये गेरुआ रंग में दिये जाते थे। भिक्षुओं को वस्त्र देने के लिए एक समारोह का आयोजन किया जाता था जिसे 'कन्थिन' कहते थे। भिक्षुओं को आदेश था कि वे दिन भर भिक्षाचारण करें और रात्रि में अपने आवास पर आकर अध्ययन अध्यापन, धार्मिक चर्चा और चिन्तन मनन करें। समय-समय पर समस्त भिक्षु एक स्थान पर एकत्र होते थे और 'पातिमोक्ख' का पाठ करते थे। 'पातिमोक्ख' बौद्ध भिक्षुओं के

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग),
कालीचरण पी०जी० कालेज,
लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

निमित्त विधि-निषेधों का संग्रह था।[16] कुछ विशेष असरों पर भिक्षुओं को एकत्र होकर धर्म-चर्चा करना 'उपोसथ' कहलाता था। इस उपोसथ में 'पातिमोक्ख' भी पढ़ा जाने लगा। उपोसथ में सम्मिलित होने के पूर्व पूर्वकृत अपराधों की स्वत: स्वीकृति के द्वारा प्रत्येक भिक्षु को 'परिशुद्धि' करनी पड़ती थी।

संघ को अपने भिक्षु सदस्यों पर पूर्ण अधिकार था, भिक्षुओं के जीवन को नियंत्रित करने के लिए नियमों का प्रावधान था, नियमों के उल्लंघन पर दण्ड का भी विधान था। संघ अपने अपराधी सदस्य को सामाजिक बहिष्कार तक का दण्ड दे सकता था, ''यह दण्ड 'बह्मदण्ड' कहलाता था।[17] दूसरा गम्भीर दण्ड संघ बहिष्कार का था।[18] ''एक सीमित अथवा निश्चिल काल तक का संघ बहिष्कार 'मानन्त' कहलाता था। सदैव के लिए किया गया संघ बहिष्कार 'परिवास' कहलाता था। परन्तु दण्ड देने के पूर्व संघ अपराधी को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का पूरा अवसर देता था। अपराधी भिक्षु की ओर से अवसर प्रदान की जो प्रार्थना होती थी उसे 'सतिविनय' कहते थे।''[19]

निष्कर्षत: बौद्ध दर्शन न केवल दार्शनिक चिन्तन है बल्कि जीवन की एक पद्धति है, जिसे अपनाकर एक संतोषप्रद जीवन यापन किया जा सकता है। दु:ख को जीवन का अभिन्न अंग मानते हुए, अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करके निर्वाण की प्राप्ति संभव है। सभी प्राणियों को निर्वाण प्राप्त हो जाय ऐसा संभव नहीं है लेकिन अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण कर जीवन में संतोष, सद्भाव व सद्इच्छा का भाव अवश्य जागृत हो सकता है, एक सफल सांसारिक जीवन के लिए इतना ही बहुत है।

आज बौद्ध संघ के संघटनात्मक प्रणाली को अपनाकर संगठन और राजनैतिक विचारधारा को मजबूती प्रदान की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति संगठन से ऊपर नहीं होता है, संगठन की वैचारिक भूमि ही संगठन का मार्ग दर्शन करती है। इसे एक दृष्टांत द्वारा समझा जा सकता है। जब वस्सकार ने आनन्द से पूछा कि तथागत ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त किया है कि नहीं आनन्द के नहीं कहने पर उसको आश्चर्य हुआ और उसने शंका व्यक्त को कि किसी नेता के अभाव में संघ की एकता नष्ट हो जायेगी। आनन्द ने वस्सकार को आश्वत करते हुए कहा कि ''ब्राह्मण! हमें किसी नेता की आवश्यकता नहीं है। धर्म ही हमारा नेता है।''[20] इससे स्पष्ट होता है कि बुद्ध ने किसी धार्मिक गद्दी अथवा गुरुदम की स्थापना नहीं की उन्हांने समस्त भिक्षु-समुदाय को ही अपना धर्म सौंपा, किसी एक भिक्षु को नहीं। यह गणतंत्रतात्मक प्रणाली का मूल उद्देश्य होता है कि शक्ति का संचय किसी एक व्यक्ति में निहित नहीं होना चाहिए। आज के धार्मिक व राजनैतिक संगठन व्यक्ति पूजक बनते जा रहे हैं जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए घातक है। लोकतंत्र में समस्त शक्तियाँ वास्तव में जनता के अन्दर ही सन्निहित होनी चाहिए, जबकि आज के दौर में इसका अभाव दिखाई दे रहा है, जनता के चुने हुए प्रतिनिधि स्वार्थ की पूर्ति में लगकर जनता के कल्याण की अवहेलना कर रहे हैं। बुद्ध के संघ के क्रिया-कलाप एकदम पारदर्शी है, उनके संघ के नियमों को अपनाकर शक्ति का विकेन्द्रीकरण करके कोई भी धार्मिक संगठन एवं राजनैतिक संगठन लोक कल्याणकारी बन सकता है।

SHODH SANCHAYAN

सन्दर्भ:-

1- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985

2-प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985

3-अद्भुत भारत: ए0एल0 वाशम, अनुवादक वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक-शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0, आगरा, संशोधित हिन्दी संस्करण 1996 पृष्ठ-240

4-भारतीय दर्शन की रूपरेखा : प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल, बनारसी दास, पंचम संशोधित संस्करण-1993, पृष्ठ-116

5-भारतीय दर्शन की रूपरेखा : प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल, बनारसी दास, पंचम संशोधित संस्करण - 1993, पृष्ठ-116

6- डॉ0 के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, दशम संस्करण-2005, पृष्ठ-110

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

आधुनिक सन्दर्भों में बौद्ध दर्शन का सामाजिक एवं लोकतांत्रिक संगठनात्मक विश्लेषण

डॉ० पंकज सिंह

रीडर (हिन्दी विभाग),
कालीचरण पी०जी० कालेज,
लखनऊ।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

7- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985 पेज-252

8- महापरिनिष्वाण सूत्र, दीर्घ0 2.3 (प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985) पृष्ठ-333

9- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985 पृष्ठ-335

10- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985 पृष्ठ-335

11- वही, पृष्ठ-334,

12- वही, पृष्ठ-335,

13- वही, पृष्ठ-334,

14- वही, पृष्ठ-334,

15- वही, पृष्ठ-336

16- वही, पृष्ठ-338,

17- वही, पृष्ठ-338,

18- वही, पृष्ठ-338

19- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985 पृष्ठ-388

20- प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास: डॉ0 विमल चन्द्र पाण्डे, सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2011 द्वितीय संस्करण, 1985 पृष्ठ-333

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN